बुद्धवर्ष २५४५, चैत्र पूर्णिमा, २७ अप्रेल, २००२ वर्ष ३१ अंक ११

धम्मवाणी

इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं, यायं तण्हा पोनोब्भविका नन्दीरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी। सेय्यथिदं - कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा।

– महावग्ग १४

भिक्षुओ, यह है दु:ख-समुदय आर्यसत्य। यह जो तृष्णा है बार-बार उत्पन्न होने के स्वभाव वाली, रागरंजन और आनंदन से संयुक्त रहने वाली, कभी यहां का, कभी वहां का रस चख-चख कर अभिनंदन करती रहने वाली। कौनसी है यह तृष्णा? यह है काम-तृष्णा, भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा।

[धारण करे तो धर्म]

भीतर मानस कैसा है?

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की इक्कीसवीं कड़ी)

जिसे अपने भीतर सत्य का दर्शन करना है, परम सत्य का दर्शन करना है, उसे बड़ा परिश्रम करना होता है। बड़ा परिश्रम, बड़ा पराक्रम, बड़ा पुरुषार्थ करना होता है और वह भी बड़ी समझदारी के साथ। गलत तरीके से पुरुषार्थ करता जायगा तो जो परिणाम आने चाहिए, वे नहीं आ पायेंगे। जो सत्य प्रकट हो रहा है, बस, उसे ही बड़ी समझदारी के साथ यथाभूत स्वीकारना है। इस पर कोई रंग-रोगन नहीं लगा लेना है। इस दार्शनिक मान्यता या उस दार्शनिक मान्यता का रंग-रोगन लगा लिया तो फिर यथार्थ से दूर हो जायेंगे। यथार्थतः जैसा है वैसा है।

तो यह व्यक्ति जो बोधिवृक्ष के तले बैठा हुआ अपने भीतर सत्य का अनुसंधान कर रहा है। सत्य का अनुसंधान करते-करते स्थूल अवस्थाओं से सूक्ष्म अवस्थाओं की ओर बढ़ता चला जा रहा है। दु:ख क्या है – यह अनुभूतियों से समझ रहा है। **यम्पिच्छं न लभति तम्पि दुक्खं** –इच्छाएं पूरी नहीं होतीं तो दु:ख होता है। पर इतना ही अनुभव करके बुद्ध नहीं बन गया। अभी और गहराइयों में जाना है। गहराइयों में जाते-जाते गहराई वाली बात पकड़ में आ गयी –**सङ्खित्तेन पञ्चुपादानखन्धा दुक्खा।** जब तक मन विक्षिप्त है, माने बिखरा हुआ है तब तक बलवान नहीं है। वह बींधने वाली प्रज्ञा को तैयार नहीं कर सकता। संक्षिप्त होते-होते इतना संक्षिप्त हो गया कि प्रज्ञा बींधने वाली हो गयी। तो बींधती हुई, छेदन करती हुई, भेदन करती हुई, टुकड़े-टुकड़े करती हुई प्रज्ञा सत्य का उद्घाटन करने लगी। उस अवस्था में '**सङ्खित्तेन**' – संक्षेप में, क्या जान गया? '**पञ्चुपादानखन्धा दुक्खा**', –अरे, ये जो पांच स्कंध हैं, इनके प्रति कितना गहरा 'उपादान' है। आज की भाषा में कहें तो इनके प्रति कितनी गहरी 'आसक्ति' है! यह दु:ख है। जड़ों तक जाने लगा। यह दु:ख है। क्या हैं पांच स्कंध? एक तो यह भौतिक स्कंध, इस शरीर का स्कंध –पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और उनका अपना-अपना स्वभाव और ये सब मिल करके एक अष्टकलाप और एक से दूसरे अष्टकलाप के बीच में शून्य। यों यह एक भौतिक स्कंध और चार स्कंध मानस के –एक 'विज्ञान' जो जानने का काम करता है, दूसरी 'संज्ञा' जो पहचानने का काम करती है, मूल्यांकन का काम करती है, तीसरी 'वेदना', अनुभव करने का काम करती है और चौथा 'संस्कार', जो प्रतिक्रिया करते हुए, कर्म-संस्कारों की गांठें बांधे जा रहा है। ये चार स्कंध – विज्ञान, संज्ञा, वेदना और संस्कार तथा वह भौतिक स्कंध, इन पांचों के प्रति कितनी आसक्ति! कितनी आसक्ति!

ऊपर-ऊपर से बुद्धि के स्तर पर खूब कहता है, यह शरीर मैं नहीं, यह शरीर मेरा नहीं, यह शरीर मेरी आत्मा नहीं। यह चित्त मैं नहीं, यह मेरा नहीं, यह मेरी आत्मा नहीं। भीतर जायगा तो मालूम होगा कि यह शरीर ही 'मैं' हो गया है, मेरा हो गया है। यह चित्त ही मैं हो गया है, मेरा हो गया है। कितना गहरा तादात्म्य स्थापित कर लिया इसके प्रति? कितनी गहरी आसक्ति पैदा कर ली इसके प्रति? व्यवहार जगत के लिए मैं कहना पड़े, मेरा कहना पड़े वह अलग बात है, लेकिन यह शरीर ही है जब कहता है कि मैं बड़ा खूबसूरत हूं। अरे, शरीर खूबसूरत है कि तू खूबसूरत है? तो शरीर मैं हो गया। मैं बड़ा लंबा हूं। मैं बड़ा ओछा हूं। मैं बड़ा बदसूरत हूं। शरीर ही मैं हो गया ना! केवल व्यवहार जगत की ही बात नहीं, उसके साथ बड़ा चिपकाव है। मैं, मेरे का भाव है। 'मेरा शरीर'। ऐसे ही 'मेरा चित्त'। जानने वाला चित्त जानने का काम करता है और यह होता है कि मैं जान रहा हूं। यह मेरा जानना है। पहचानने वाला चित्त पहचानने का काम करता है और यूं होता है कि मैं पहचान रहा हूं। यह मेरा पहचानना है। अनुभव करने वाला चित्त अनुभव करता है और यूं होता है जैसे मैं अनुभव कर रहा हूं। यह मेरा अनुभव है। प्रतिक्रिया करने वाला चित्त प्रतिक्रिया करता है और यूं होता है जैसे मैं अनुभव कर रहा हूं। यह मेरा अनुभव है। यह मेरी प्रतिक्रिया है।

मैं, मेरा, मैं, मेरा और कितना गहरा चिपकाव, कितना गहरा चिपकाव! व्याकुल ही व्याकुल, व्याकुल ही व्याकुल। हजार अपने आपको कहता रहे कि मैं नहीं मानता कि यह शरीर मैं हूं, मेरा है, मेरी आत्मा है। मैं नहीं मानता कि यह चित्त मैं हूं, मेरा है, मेरी आत्मा है। पर वस्तुतः तो ऐसा ही हो रहा है ना! भीतर जाय तो बिल्कुल ऐसा ही हो रहा है।

शिविरों में ऐसी घटनाएं होती रहती हैं। कोई एक भाई आता है कि देखिये, यह साधना करते-करते हमने सुना कि दस ही दिन में आपके सिर-दर्द का बहुत बड़ा रोग निकल गया। मुझे तो देखिए कमर का दर्द न जाने कितने बरसों से है, अब तक नहीं निकला। एक शिविर कर लिया, नहीं निकला। दो शिविर कर लिये, नहीं निकला। बहुत दर्द है। आप कुछ कीजिए। अरे, तो तू तो ऐसी मान्यता मानने वाला है ना कि शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न। तो शरीर को दर्द होता है, होने दे ना! क्यों रोता है? अरे, वह फिलासफी की बात, उसे छोड़िए, कोई रास्ता बताइए, मेरे पीठ का दर्द निकल जाय रे! अरे भाई, वास्तविकता यही है कि शरीर के प्रति कितना गहरा तादात्म्य स्थापित हो गया है। यह देहात्म बुद्धि, यह चित्तात्म बुद्धि, इन फिलासफियों से निकलने वाली नहीं है। सच्चाई को

देखते-देखते भीतर जायगा। अरे, कितना उपादान है रे! कितनी गहरी आसक्ति है रे! इन पांचों स्कंधोंके प्रति कितनी गहरी आसक्ति है! ओ, यह व्याकुलता है! यह आसक्ति ही व्याकुलता है। खूब समझ में आने लगेगा। अनुभूतियों से आने लगेगा तो आसक्ति टूटती जायगी, टूटती जायगी। छुटकारा होता चला जायगा। इसका साक्षात्कार करे, दर्शन करे माने अनुभव करे। उपादान बहुत दुःखदायी। एक बड़ा उपादान होता है, आसक्ति होती है अपनी तृष्णाओं के प्रति। तृष्णा जागी। यही अपने आपमें बहुत दुःखदायी। तृष्णा के साथ ही दुःख जागता है इसलिए उसको दुःख समुदय कहते हैं। तृष्णा जागी, साथ-साथ दुःख जागा। और कहीं उस तृष्णा के प्रति आसक्ति हो गई, उसके एडिक्ट हो गये तो और कठिनाई हो गयी। अब तो बार-बार तृष्णा जगायेगा ही। जानता है कि तृष्णा जगाने से व्याकुल होता हूं, फिर भी तृष्णा जगायेगा। जानता है व्याकुल होता हूं, फिर भी तृष्णा जगायेगा। क्योंकि आसक्त हो गया। उसका एक नशा हो गया।

किसी को दाद हो गया, किसी को कोढ़ हो गयी। जी चाहता है खुजलाऊं। खुजलाता है, पीड़ा होती है। फिर जी चाहता है खुजलाऊं। खुजलाता है, पीड़ा होती है। फिर जी चाहता है खुजलाऊं, फिर पीड़ा होती है। खुजलाता है, पीड़ा होती है। खुजलाता है, पीड़ा होती है। अरे, फिर भी खुजलाये जा रहा है। खुजलाने की आसक्ति हो गयी। व्यसन हो गया। ऐसे ही तृष्णा का व्यसन हो गया। एक तृष्णा पूरी हुई कि झट दूसरी अपना सिर उठा लेगी। तृष्णा कायम रहनी चाहिए। यह वस्तु, व्यक्ति, स्थिति, इसके प्रति तृष्णा जागी। उपलब्ध हो गयी। अब कुछ और चाहिए। जो उपलब्ध हो गयी, वह बासी हो गयी। कुछ और चाहिए। अरे, बिना पेंदे की बाल्टी है, भर ही नहीं पायेगी।

तृष्णा पर तृष्णा, तृष्णा पर तृष्णा; घर में यह आ गया, बड़ी अच्छी बात। देखता है अरे, पड़ोसी के यहां तो वह है। अरे, मेरे यहां तो है ही नहीं। जो पड़ोसी के यहां है वह मेरे पास भी आना चाहिए। अब वह आया। तो उसके यहां यह है, मेरे पास नहीं है, वह आना ही चाहिए। तृष्णा पर तृष्णा, तृष्णा पर तृष्णा। मैं औरों से एक इंच ऊंचा रहूं। कहीं नीचा न हो जाऊं। उसकी एन्युअल सेल्स इतनी होती है। मेरी इससे ज्यादा होनी चाहिए। कितनी तृष्णा है और कितना व्याकुल है। व्याकुल ही व्याकुल, व्याकुल ही व्याकुल। तृष्णा के प्रति व्याकुल हो जाना और तृष्णा से आसक्त होकर व्याकुल हो जाना, मानो करेला था ही बड़ा खारा और नीम चढ़ गया, तो खारापन ही खारापन। तृष्णा के प्रति जहां आसक्ति जागी, वहां दुःख का ढेर लग गया, ढेर लग गया।

एक और आसक्ति जागती है – 'मैं' के प्रति, 'मेरे' के प्रति। बहुत बड़ी आसक्ति – मैं, मैं; मैं ऐसा, मैं ऐसा। इस 'मैं' के खिलाफ कोई एक शब्द बोल दे तो कितना चिड़चिड़ाता है? कितने विकार जगाता है और कितना व्याकुल हो जाता है? इस मैं के खिलाफ कोई जरा-सा काम कर दे, कितना चिड़चिड़ाता है, कितना व्याकुल होता है? क्योंकि मैं के प्रति इतनी गहरी आसक्ति हो गयी। बहुत गहरी आसक्ति हो गयी। जैसे मैं, वैसे मेरा। यह मेरा, यह मेरा। इतना गहरा चिपकाव कर लिया इस 'मेरे' के प्रति। व्याकुल ही व्याकुल, व्याकुल ही व्याकुल। यह मेरी घड़ी, बड़ी कीमती घड़ी। अरे, यहां तो मिलती ही नहीं। विदेश गया था, वहां से ले आया। इस माडल की, इतनी कीमती घड़ी, इतनी बढ़िया घड़ी। एक दिन असावधानी से गिर पड़ी और टूट गयी। अब देखो, रोये जा रहा हूं, मेरी कीमती घड़ी टूट गयी रे, मेरी इस माडल की घड़ी टूट गयी रे! इस देश में तो मिलती ही नहीं रे! इस देश में तो इसके कलपुर्जे ही नहीं मिलते रे! रोये जा रहा हूं, रोये जा रहा हूं।

वैसी ही घड़ी, उसी माडल की घड़ी, उतनी ही कीमती घड़ी मेरे मित्र की कलाई में बँधी हुई और उसकी असावधानी से गिरी और टूट गयी। अब नहीं रोना आता। क्यों भाई, वह भी तो कीमती घड़ी थी ना! क्यों नहीं रोता? रोता नहीं, बल्कि उपदेश देता हूं। अरे, तुझे समझदारी से काम करना चाहिए था। इतनी कीमती घड़ी, सँभाल कर रखनी चाहिए थी। इस देश में तो मिलती ही नहीं। अरे, इसके कलपुर्जे भी नहीं मिलते। रोता नहीं ना! अब तो उपदेश देता हूं।

कीमती घड़ी के टूटने को कोई नहीं रोता दुनिया में। मेरी घड़ी, मेरी घड़ी टूटी रे! मेरी घड़ी टूटी रे! मेरी के प्रति इतनी गहरी आसक्ति। जितनी गहरी आसक्ति उतनी ही गहरी व्याकुलता, उतना ही गहरा रोना। प्रकृति का नियम है, कुदरत का कानून है। जहां आसक्ति आयी, वहां रोना आयेगा ही। जहां आसक्ति आयी वहां व्याकुलता आयेगी ही। आसक्ति कोई सौ-पचास रुपये की वस्तु के प्रति हो या सौ करोड़ रुपये के प्रति हो। आसक्ति आसक्ति है। उतना ही रोना आयेगा। कुछ फर्क नहीं पड़ेगा।

एक घटना घटी। उन दिनों ब्रह्मदेश से नया-नया आया था। तो तपोभूमियां तो बनी नहीं थी। कोई-कोईभाई कहीं-कहींये जिप्सी कैंप लगा देते थे। खानाबदोश कैंप लगते थे। अब भी लगते हैं कहीं-कहीं, क्योंकि तपोभूमियां तो गिनती की हैं। बन रही हैं फिर भी मांग इतनी है तो कहीं किसी धर्मशाला में, किसी स्कूल में, कहीं हॉस्टल में, यहां-वहां शिविर लगते रहते हैं। तो एक भाई मेरा बड़ा मित्र, सर्व-सेवा संघ का बड़ा नेता। बर्मा रहते ही उससे जरा परिचय हो गया था। यहां आया तो मिला। तो उसने कहा, राजस्थान तो आपके पुरखों की भूमि है। वहां तो एक शिविर लगाइये। ठीक है, आप प्रबंध करें, हम तो सिखाने वाले पहुँच जायेंगे। हां भर लिया और उसने ढूंढ-ढांढ करके सिरोही के पास एक छोटे-से गांव बामनवाड में शिविर लगाया। इतना छोटा-सा गांव कि वहां के तो कौन आते, इक्के-दुक्के बैठे होंगे। बाकी आसपास के नगरों से आये।

शिविर शुरू हुआ। उसमें नजदीक के शहर से एक बुढ़िया भी आयी। बड़ी बूढ़ी और बहुत प्रसन्न होकर लगन से काम करे, निष्ठा से काम करे। एक दिन यकायक सुबह के ध्यान से अपने निवास में गयी तो जोर से चीखी, चिल्लायी। लोग भागे हुए गये, क्या हो गया इसे? इसे किसी सांप ने काट लिया कि बिच्छू ने डंक मार दिया? परंतु वह रोये ही जाय। अरे माई! क्या हो गया? वह कहती है कि जब मैं घर से चली थी तो कपड़े की एक छोटी-सी थैली में मेरे बचे हुए बीस-पच्चीस रुपये डाल रखे थे और पचास बरस पहले जब विवाह हुआ था तो चांदी का एक आभूषण जो हमें दहेज में मिला था, वह उसमें डाल रखा था और चलने लगी तो पड़ोसन ने एक सूखी मिठाई का टुकड़ा दे दिया, वह भी उसमें डाल रखा था। जब-जब ध्यान करूं तो अपने पांवों के नीचे उसे रख करके ध्यान करूं। सोऊं तो रात को उसे अपने सिरहाने रख करके सोऊं। आज हाल में गयी तो उसे यहीं भूल गयी। अरे, कोई ले गया रे! मैं तो लुट गयी रे! मेरा तो सारा धन गया रे! रोये ही जाय, रोये ही जाय।

लोग समझायें, बुढ़िया माई, तेरे बीस-पच्चीस रुपये नगद और वह बीस-पच्चीस रुपये का आभूषण होगा। पचासेक रुपये का माल खोया है तूने, हम इकट्ठा कर देंगे। तू काम कर ना! पर कहां माने! रोये ही जाय, रोये ही जाय। लोगों ने कहा, जब तक इसके हाथ में रुपया नहीं रखेंगे, इसका रोना नहीं मिटेगा। यह बिचारी काम नहीं कर पायेगी। रुपये इकट्ठे करने लगे तो लगभग सौ रुपये हो गये। रख दिया उसके सामने कि अब तो खुश हो जायगी। कहां खुश होवे। रोये ही जाय, मैं क्या करूंइन रुपयों का? मेरा वह आभूषण रे, मेरा वह आभूषण रे, जो मुझे विवाह में मिला, जो मुझे दहेज में मिला रे! उसके प्रति इतनी आसक्ति है, अब वह कहां से आए? रोये ही जाय, दिन भर रोती रही। शाम को किसी ने देखा, एक बंदर पेड़ के ऊपर उस कपड़े की थैली में से मिठाई निकाल के खा रहा है। लोग उसके पीछे भागे, उससे छुड़वा कर लाये। उसका आभूषण उसके पास रखा तो रोना मिटा। अब वह रोना, चाहे पचास-सौ रुपये के आभूषण का था कि पचास-सौ करोड़ की मल्कियत का, कोई फर्क नहीं पड़ता। आसक्ति कितनी

है? जितनी गहरी आसक्ति है उतना ही ज्यादा गहरा रोना आयेगा। व्यवहार जगत के लिए 'मैं' कहे, 'मेरा' कहे, अलग बात। लेकिन 'मैं' के प्रति आसक्ति हो जाय और इसी तरह 'मेरे' के प्रति आसक्ति हो जाय तब बहुत व्याकुल होता है, बहुत व्याकुल होता है।

ऐसी ही एक और घटना। उत्तरप्रदेश के अवध क्षेत्र में किसी गांव में शिविर लगा। गांव के लोग आये। आसपास के नगरों से भी कुछ लोग आये। शिविर चल रहा है। दोपहर को बारह से एक बजे साधक मिलने आते हैं। उन दिनों दस मिनट दिया करते थे। लोग थोड़े होते थे। अब तो दस मिनट भी नहीं मिलते बेचारों को। तो दस मिनट का समय देते थे। उनमें एक संन्यासी था जो समीप के नगर से आया। वह कहने लगा कि गोयन्काजी, दस मिनट में मेरे प्रश्न का कैसे समाधान होगा? मुझको तो एक बार आप आध घंटा समय दीजिए। नहीं महाराज, हम नहीं देंगे। हम जानते हैं आप क्या चर्चा करोगे। कोई-न-कोई दार्शनिक बात, कोई-न-कोई दार्शनिक मान्यता, ऐसी आत्मा होती है, ऐसा परमात्मा होता है। दोनों एक होते हैं। नहीं, नहीं, अलग-अलग होते हैं। मुझको इन सारी बातों से मतलब नहीं। मन के विकार निकालने की यह विद्या है। यह काम आपको ठीक लगे तो कीजिए। दार्शनिक बातों के लिए समय बिल्कुल नहीं देंगे। तो वह कहता है महाराज, इतने दिन हो गये आपके साथ ध्यान करते हुए। खूब समझ गया कि ये सब निकम्मी बातें हैं। उसमें नहीं पड़ेंगे। हमको तो साधना के बारे में ही बात करनी है। पांच-दस मिनट में हो नहीं पायगी। हमको तो आध घंटा दीजिए, आध घंटा दीजिए। अच्छी बात। चलो, किसी तरह से आध घंटा निकाला। दो-चार मिनट तो साधना की बात होती रही। ऐसा होता है, हमें ऐसा अनुभव होता है। ऐसा क्यों नहीं होता है, इत्यादि, इत्यादि। फिर यकायक टॉपिक बदल गया। गोयन्काजी, जिस नगर से वह आया है, उस नगर में जो आपका बड़ा-सा मठ है ना? अरे, मेरा मठ है? मैं कभी गया नहीं उस नगर में। मेरा मठ कैसे भाई? मठ तो संन्यासियों का होता है और मैं तो गृहस्थ हूं। और गृहस्थ होने का इतना बड़ा प्रमाण अपने साथ रखता हूं। तो भाई, मेरा मठ कैसे होगा? गोयन्काजी, आप समझिए तो सही। आपका मठ, आपका मठ और फिर कहता है आपके मठ में वह जो आपका हाथी झूमता है। मेरा हाथी झूमता है? अरे, संन्यासीजी, कह क्या रहे हो? मेरा मठ? मेरा हाथी? तो कहता है आप समझने की कोशीश कीजिए गोयन्काजी! अरे, इतने में तो बात समझ में आ गयी। अपना भारत बड़ा महान देश है। बहुत तरह के लोग होते हैं। ऐसे लोग भी होते हैं जिन्होंने यह व्रत ले रखा है कि मैं कभी अपने मुँह से 'मैं' नहीं कहूँगा, 'मेरा' नहीं कहूंगा। जब-जब 'मैं' कहना होगा तो 'आप' कहूँगा। जब-जब 'मेरा' कहना होगा तो 'आपका' कहूंगा। अब समझ में आ गया। अच्छा, मेरा मठ और मेरा हाथी। कहिए, क्या बात हुई? अब उसने वह मठ, उसमें कोई एक बिल्डिंग बना ली और वहां की नगरपालिका की मंजूरी के बिना बना ली और वहां से आर्डर आ गया कि इसको तोड़ेंगे। नगर के बीच में हाथी कोई रख नहीं सकता। नगर के बाहर रखे। वह नगर के बीच में अपना हाथी लिए बैठा है। तो नगरपालिका का आर्डर आ गया, इस हाथी को यहां से निकालो। तो गोयन्काजी, उसे बचाइये। उसने कहीं से सुन लिया कि उस नगरपालिका का चैयरमेन कभी बर्मा गया था। कुछ दिनों हमारे घर में हमारा मेहमान बन कर रहा था। आप बस दो-चार शब्द उसे लिख दें। आपका हाथी बच जायगा, आपका मठ बच जायगा। 'आपका' कहता है, 'मेरा' नहीं कहता। अरे, घरबार छोड़ दिया, संन्यासी है। 'मैं' नहीं कहता, 'मेरा' नहीं कहता। पर कितनी आसक्ति है, कितनी आसक्ति है और कितना व्याकुल है, कितना व्याकुल है! कुदरत इस बात को नहीं देखती कि यह आसक्ति पैदा करने वाला व्यक्ति कोई संन्यासी है कि गृहस्थ है। इसने पीले कपड़े पहन रखे हैं कि सफेद कपड़े पहन रखे हैं। लाल कपड़े पहन रखे हैं कि काले कपड़े पहन रखे हैं। कुछ नहीं देखती। यह व्यक्ति जो आसक्ति जगा रहा है वह अपने आपको हिंदू कहता है कि बौद्ध कहता है कि जैन कहता है कि ईसाई कहता है कि मुस्लिम कहता है कि सिक्ख कहता है, कुछ नहीं देखती। यह अपने आपको भारतीय कहता है कि पाकिस्तानी कहता है कि अमेरिकन कहता है, कुछ नहीं देखती। आसक्ति जगी है ना! आग पर हाथ रखा है ना! जलेगा ही। कुदरत का कानून है। विश्व का विधान है। ऋत है। अरे, इसी की तो खोज भीतर करनी होती है।

हम कैसे आग पर हाथ रखे जा रहे हैं। बाहर-बाहर से तो यह आलंबन है, वह आलंबन है। यह कारण दीखता है, वह कारण दीखता है। यह हाथी है, यह मठ है, यह घड़ी है, यह अमुक है, यह अमुक है। भीतर आसक्ति है। रोना आसक्ति का आता है। आसक्ति भी हो और रोना भी नहीं आये, यह होने वाली बात नहीं। एक शर्त पर हो भी सकती है। खूब आसक्ति हो फिर भी व्याकुलता नहीं आयेगी। कब नहीं आयेगी? जबकि यह मैं, जो इस वस्तु को, व्यक्ति को, स्थिति को भोग रहा हूं, वह 'मैं' हमेशा इसी प्रकार बना रहूं, इसी प्रकार बना रहूं, नष्ट नहीं हो जाऊं और फिर जिसको मैं भोग रहा हूं वह वस्तु, वह व्यक्ति, वह स्थिति, वह भी वैसी की वैसी बनी रहे। अनंतकालतक बनी रहे। मैं अनंतकालतक बना हुआ हूं। जिस वस्तु या व्यक्ति के प्रति आसक्ति जागी है, वह अनंतकालतक बना हुआ है तो क्यों रोना आयेगा? रहे ना आसक्ति! पर भाई, ऐसा कहां होता है? जिसको 'मेरा, मेरा' कहता हूं, देखते-देखते नष्ट हो जाता है। मैं असहाय कुछ नहीं कर पाता। वह नहीं नष्ट होता तो समय आता है, मैं नष्ट हो जाता हूं। वह सारी धरी रह जाती है। तो जब-जब भी बिलगाव आयेगा, बिछोह आयेगा, रोना ही आयेगा। यह कुदरत का बँधा-बँधाया नियम, जहां उपादान हुआ, जहां आसक्ति हुई, वहां रोना आयेगा ही। क्यों? क्योंकि अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। जिसे मैं, मैं किये जा रहा हूं, वह भी अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। जिसे मेरा, मेरा किये जा रहा हूं, वह भी अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। तो रोने के सिवाय और क्या आयेगा?

आसक्ति नहीं हो, जरा भी रोना नहीं आयेगा। अनासक्त होकर संसार में रहें, अपनी जिम्मेदारियों के सारे काम पूरे करते रहें। आसक्ति नहीं हो, चिपकाव नहीं हो। जीना आ जायगा। जीने की कला आ जायगी। अरे, धर्म का जीवन हो गया ना फिर तो! निर्मल चित्त का जीवन हो गया, अनासक्ति का जीवन हो गया। ऐसा करने के लिए ही अंतर्मुखी होते हैं। यह विद्या सीखने के लिए ही अंतर्मुखी होते हैं। आसक्ति कहां जागी? जागी तो बढ़ तो नहीं रही है? कैसे उसका निराकरण करें? बस, यह सीखते-सीखते आसक्ति दूर होती जाय तो दुःख दूर होता जाय। अनासक्ति आती जाय तो सही माने में सुख आता जाय। जो-जो इस विद्या में पारंगत होता चला जाय, उसका मंगल ही मंगल। कल्याण ही कल्याण। उसकी स्वस्ति ही स्वस्ति। उसकी मुक्ति ही मुक्ति।

एक प्रार्थना

हम अपने आप को हिंदू कहें या मुस्लिम, बौद्ध कहें या जैन, सिक्ख कहें या ईसाई, यहूदी कहें या पारसी; परंतु मूलतः हम सब मनुष्य हैं, इंसान हैं। यदि हमने मनुष्यता खो दी, इंसानियत खो दी तो सब कुछ खो दिया। हिंदुत्व खो दिया, इस्लामियत खो दी, बौद्धत्व खो दिया, जैनत्व खो दिया, सिक्खत्व खो दिया, ईसाइयत खो दी, यहूदीयत खो दी, पारसीयत खो दी। कुछ नहीं बचा। सब कुछ गँवा दिया। मानवता खो कर हम क्या बचा पायेंगे? किसे सुरक्षित रख पायेंगे? इन दिनों हमारे यहां जो हृदयहीन अमानुषिक घटनाएं घट रही हैं, वे जिस किसी के द्वारा घट रही हों, वे नितांत लज्जाजनक हैं, शर्मनाक हैं। ये दैवी और मानुषी वृत्तियां नहीं, बल्कि आसुरी और हैवानियतभरी वृत्तियों की नुमाइश हैं।

बस, बहुत हो चुका। आओ, अब हम इस जहरीले जोश को दूर करें। मैत्रीपूर्ण होश जगाएं। घृणा और क्रोध पर, द्वेष और दुर्भावना पर, हिंसा और प्रतिहिंसा पर आधारित दुष्कर्मों से बचें। क्षमा और सहिष्णुता के सद्गुण धारण

करें। इस सच्चाई को समझें कि कभी आग से आग नहीं बुझाई जा सकती। द्वेष से द्वेष नहीं मिटाया जा सकता। अशांति से शांति प्राप्त नहीं हो सकती। असुरक्षा से सुरक्षा हासिल नहीं की जा सकती।

प्रतिशोध और प्रतिहिंसा के जो दूषित भावावेश हृदय में सुलग रहे हैं, जिनके कारण आंखें लाल हो रही हैं, उसे दूर कर होश जागे, इंसानियत जागे, मानवता जागे। दानवी वृत्तियों का प्रहाण हो, मानवी वृत्तियों का उद्भव हो! इसी में देश का मंगल है, कल्याण है। इसी से विश्व के मंच पर भारत की पुनीत गौरव गरिमा पुनर्स्थापित होगी।

सब का भला हो! सब का मंगल हो! सब का कल्याण हो!

प्रार्थी, सत्यनारायण गोयन्का (प्रमुख विपश्यनाचार्य)

पूज्य गुरुजी के प्रवचनों और वंदना की कैसेट्स

मुंबई के श्री दीपचंद शाह ने अपनी ओर से ऐसी व्यवस्था की है कि अधिक से अधिक साधकों को कम से कम दामों पर गुरुजी के प्रवचनों आदि की कैसेट्स मिलें। अत: अब दस दिवसीय शिविर के ११ प्रवचनों का सेट मात्र १६५)- रु. में तथा सोनी कैसेट्स का सेट मात्र ४४०)- में उपलब्ध है। प्रात:कालीन वंदना और दोहे के कैसेट भी सस्ते दामों में उपलब्ध हैं। (विक्रेताओं को १५% कमीशन भी।)

वंदना और दोहों की **सीडी** प्रत्येक २५०)- में, ११ प्रवचनों की **वीसीडी** कासेट ६५०)- में तथा विपश्यना साहित्य भी उपलब्ध है।

साधक निम्न पतों पर सीधे संपर्क करें (विपश्यना विश्व विद्यापीठ या संपादक का इससे कोई संबंध नहीं है।) : - (१) - श्री दीपचंद शाह, बी-३५, डलास बिल्डिंग, ज्ञानमंदिर रोड, दादर (प.), मुंबई- ४०००२८, फोन:४२२८१३४. (२) -श्री राठी, शिवकृष्ण मेडिकल स्टोर, २०६, जूना आग्रा रोड, इगतपुरी-४२२४०३, फोन: ४४०३६.

विपश्यना पत्र के स्वामित्व आदि का विवरण

समाचार पत्र का नाम : **"विपश्यना"**
भाषा : हिंदी
प्रकाशन का नियत काल : मासिक (प्रत्येक पूर्णिमा)
प्रकाशन का स्थान : विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३.
मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक का नाम : राम प्रताप यादव
राष्ट्रीयता : भारतीय
मुद्रण का स्थान : अक्षरचित्र, बी-६९, सातपुर, नाशिक-७.

पत्रिक के मालिक का नाम : विपश्यना विशोधन विन्यास, (रजि. मुख्य कार्यालय):
ग्रीन हाऊस, २ रा माला,
ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, मुंबई-४०००२३.

मैं, राम प्रताप यादव एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि ऊपर दिया गया विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

राम प्रताप यादव,
मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक
दि. २८-३-२००२.

दोहे धर्म के

दुःख नाम आसक्ति का, मूल बात यह जान।
अनासक्ति से दुख मिटें, धर्म मूल पहचान॥

नन्हीं सी तृष्णा जगी, बनी गहन आसक्ति।
जब तक मन आसक्त है, कहां दुखों से मुक्ति?

धन वैभव उपभोग सब, भोगे दुःख अजान।
अनासक्ति से भोगते, बने सुखों की खान॥

जो चाहे सुख ना घटे, होय दुखों का नाश।
दासी बन तृष्णा रहे, मत बन तृष्णा दास॥

तृष्णा से व्याकुल व्यथित, दुखित हुआ संसार।
तृष्णा टूटे दुख मिटे, नहीं अन्य उपचार॥

हिंदू मुस्लिम सिक्ख या, बौद्ध ईसाई जैन।
राग द्वेष जिसके मिटे, मिले उसे सुख चैन॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
• महालक्ष्मी मंदिर लेन, ८ महालक्ष्मी चैंबर्स, २२ वार्डन रोड, मुंबई-४०००२६.
टे. ४९२३५२६, • सनस प्लाजा, शॉप ११-१३, १३०२, सुभाष नगर, पुणे-४११००२.
टे. -४८६१९०, • दिल्ली- २९११९८५,• पटना- ६७१४४२, • वाराणसी- ३५२३३१,
• बैंगलोर- २२१५३८९,• चेन्नई- ४९८२३१५, • कलकत्ता- २४३४८७४
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

दुख कारण समझ्यो नहीं, बढग्यो दुक्ख अनंत।
ज्यूं ही कारण समझियो, कर्‌यो निवारण संत॥

देख्यो दुख रै मूल नै, देख्यो त्रिस्णा सत्य।
सत्य उखड़तां ही मिल्यो, मुक्ति मोक्ष कैवल्य॥

अपणै दुख रै मूल नै, देख स्वयं रै मांय।
आग सुलगती ना दिखै, कैयां आग बुझाय॥

दुख देख्यो अर दुक्ख रो, कारण दीख्यो मूळ।
निरमूळन रो पथ दिख्यो, हुयो दुक्ख निरमूळ॥

दोस पराया देखिया, अपणा देख्या नांय।
देखै अपणा दोस तो, निरदोसी हो ज्याय॥

ब्याकुल ही होतो रह्यो, देख पराया दोस।
देखण लाग्यो दोस निज, तो ही आयो होस॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स
३१ -४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
टे. ०२२- २०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) ४४०८६, ४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४५,** **चैत्र पूर्णिमा,** **२७ अप्रेल, २००२**

वार्षिक शुल्क रु. २०/-, विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. २५०/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2002

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
Posting day- Purnima of Every Month, Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३) ४४०७६
फैक्स : (०२५५३) ४४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
e-mail: dhamma_nsk@sancharnet.in